दिशा

लोकसंस्कृति का व्यापीकरण

लोकसंस्कृति पर कुछ कहने से पहले यह तथ्य ध्यान में रखना जरूरी है कि लोकसंस्कृति एक गम्भीर विषय है, क्योंकि वह लोक की अनेक समस्याओं से संबंधित होने से लोक के महत्त्व का है, और कम-से-कम एक लोकतंत्र में उसके प्रति हल्की-फुल्की मुद्रा का कोई औचित्य नहीं है। अक्सर लोकगीतों के आधार पर लोकसंस्कृति के रूप का निर्धारण कर लिया जाता है और कालविशेष की चेतना या किसी भी ऐतिहासिक क्रमबद्धता को अनदेखा करना उचित-सा समझा जाता है। एक लोकगाथा या लोकगीत इस्लाम-युग के पूर्व का है, एक मुगल युग का और एक अंग्रेजों के समय का, तीनों को एक साथ लेकर लोकादर्शों, रीति-रिवाजों आदि की चर्चा, अभिव्यक्ति की एक सामान्य प्रणाली बन गयी है। इस तरह अब तक लोकसंस्कृति के स्थिर रूपों की कल्पना की गयी है, जिससे किसी भी युग की लोकसंस्कृति का सही रूप प्रकाश में नहीं आ पाया। फल यह हुआ कि न तो लोकसंस्कृति के ऐतिहासिक अनुशीलन का प्रयत्न हुआ और न ही उसकी शक्ति या प्रभाव की प्रामाणिक समीक्षा हो सकी।

किसी भी अंचल या धरती के टुकड़े की लोकसंस्कृति तत्कालीन लोक, लोकमानस और पिरस्थितियों पर निर्भर होती है। युग की बदली हुई परिस्थतियों से अंतर्क्रिया करते हुए जब लोकमानस और लोक बदलता है, तब लोकसंस्कृति का परिवर्तन सहज-स्वाभाविक है। यह बात अलग है कि यह परिवर्तन लोक की प्रकृति के अनुसार होने से उतना प्रभावी न प्रतीत हो, जितना कि उच्चवर्गीय संस्कृति में सम्भव होता है। लेकिन ऐसे अनेक प्रामाणिक साक्ष्य मौजूद हैं, जिनसे सिद्ध है कि लोकसंस्कृति एक गतिशील प्रक्रिया है और उसका अपना एक इतिहास है। अगर वह युग के अनुरूप न चलती, तो पीले पत्ते की तरह झड़ जाती और उसका नामोनिशान न रहता।

> लोकसंस्कृति का इतिहास लोकचेतना और लोकाचरण का इतिहास है। वह किसी राजा, सामंत या किसी विशिष्ट नाम की परवाह नहीं करता, वरन् लोकप्रवृत्तियों और लोकदशाओं का लेख-जोखा पेश करता है। असल में लोकसंस्कृति के अंगों-उपांगों, जैसे-लोकमूल्यों, लोकाचरण, लोकसाहित्य, लोककलाओं आदि में व्यक्ति-विशेष भागीदार होता हुआ भी अधिकतर अदृश्य रहा है। यदि कहीं उसकी छाप या पहचान मिलती है, तो उसका पूरा परिचय दुर्लभ होता है। इस वजह से तिथिवार इतिहास खोजना तो कठिन है, पर कालखण्डों या ऐतिहासिक युगों के अनुसार लोकसंस्कृति के विकास की नाप-जोख की गयी है। दरअसल, लोकसंस्कृति का इतिहास ही सच्चा इतिहास है, क्योंकि वह देश की जनता का इतिहास है, क्योंकि वह देश की जनता का इतिहास होने के कारण देश का सही इतिहास भी है।

इतिहास-चेतना लोक और लोकसंस्कृति के लिए इसलिए उपयोगी है कि उससे अतीत, वर्तमान और भविष्य की काल-चेतना का मानचित्र सामने रहता है, जिससे लोक अपनी चेतना और आचरण के प्रावह की दिशा तय करता है। इतना ही नहीं, अनेक समस्याओं के समाधान में इतिहास-चेतना सहायक बनती है। इतिहास-चेतना की सूक्ष्मदर्शी आँख वर्तमान काल की लोकसंस्कृति की स्थिति और लोक की समस्याओं को भी साफ-साफ पढ़ती है। इस संदर्भ में एक स्थिति यह है कि वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता का दबाव जीवन के हर क्षेत्र में इतना बढ़ गया है कि भावुकताप्रधान प्रवृत्तियाँ बहुत पीछे चली गयी हैं। फलस्वरूप संस्कृति भी काफी सिकुड़ कर सीमित होने लगी है। नगरों ने गाँवों को अपने शिकंजे में

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

जकड़ने का ऐसा आकर्षक इंतजाम किया है कि लोकसंस्कृति के संरक्षक ही लोकसंस्कृति की उपेक्षा करने पर तुले हुए हैं। असल में संक्रमणकाल के इस दौर में, जहाँ लोक बदलाव के चक्र में घूम रहा है, वहाँ कुछ लोकमूल्य भी घिसे-पिटे होने के कारण चलन से बाहर हो रहे हैं। इन परिस्थितियों में पुराने सांस्कृतिक समूहों (कल्चरल गुप्स) का छिन्न-भिन्न होना और अपनी संस्कृतिक इकाई के प्रति सचेतन होना संभावित ही था, और लोकसंस्कृति का संकुचन भी एक स्वाभाविक क्रिया के रूप में ही घटित हुआ।

दूसरी स्थिति लोकसंस्कृति के पक्ष में है। बौद्धिकता और यांत्रिकता और उनसे उत्पन्न विसंगतियों एवं विकृतियों के विरुद्ध लोक जागरूक होने लगा है। रागात्मकता और भावुकता फिर अँगड़ाई ले रही है। लगता है कि लोकसंस्कृति का नया विकास दस्तक दे रहा है और नये लोकमूल्यों एवं नवाचारों के अंकुर फूटने को हैं। साक्षी है-लोकसंस्कृति के प्रति बढ़ता हुआ सम्मान का भाव एवं परिनिष्ठित संस्कृति का उससे प्रेरणा ग्रहण कर प्रभावी बनने की कोशिश।

इन दोनों स्थितियों के बावजूद लोक में आज भी विषमता और विषाक्तता ज्यादा है। एक तरफ भौतिकतावादी मूल्यों का बढ़ाव है, दूसरी तरफ हथियारों की होड़ से उत्पन्न विनाश का खतरा है और तीसरी तरफ कट्टर सम्प्रदायवाद का विष है, तो चौथी तरफ मानसिक कुण्ठा, निराश एवं टूटन का साम्राज्य है। चारों तरफ से घिरा व्यक्ति आखिर कैसे बचे, कौन-सी ऐसी दवा है, जो सुरक्षा की जिम्मेदारी ले सकती है ? क्या इन संदर्भों में लोकसंस्कृति भी कुछ सोचती है या कुछ कर सकती है ? आज तो वही संस्कृति आवश्यक है, जो इन सवालों का उत्तर दे सके।

लोकसंस्कृति लोक की संस्कृति है, किसी उच्च या विशिष्ट वर्ग की नहीं। अतएव उसमें वर्ग-वैषम्य के लिए कोई स्थान नहीं। लोकमूल्य हों, चाहे लोकाचरण, वे सबके लिए एक-से हैं। चाहे गरीब हो चाहे अमीर, लोकसंस्कार और लोकोत्सव सबके लिए एक अर्थ रखते हैं। सबके लिए एक-सा लोकसाहित्य और एक-सी लोककला। मतलब यह हे कि लोकसंस्कृति में वही सब कुछ होता है, जो लोकमान्य और लोकगृहीत हो।

सैद्धान्तिक रूप से लोकसंस्कृति की चिन्तना लोकदर्शन और लोकधर्म से अनुशासित होती है। लोकदर्शन में किसी विशिष्ट दर्शन और मतवाद तथा लोकधर्म में किसी कट्टर धार्मिकता और साम्प्रदायवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। इसलिए लोकसंस्कृति के लोकमूल्य किसी सम्प्रदायगत या जातीय मान्यता से नियंत्रित नहीं होते। लोकदेवता हरदौल के पास मेहतर की चौंतरिया भी पूज्य है क्योंकि यदि हरदौल ने देवर-भाभी के प्रेम का आदर्श प्रतिष्ठित किया है, तो मेहतर ने स्वामिभक्ति का। लोकसंस्कृति के लोकदेवताओं में जहाँ शिव, राम, कृष्ण, हनुमान आदि हैं, वहाँ गौड़ बाबा, ठाकुर बाबा (यक्ष), नट बाबा आदि भी हैं। इस प्रकार लोकसंस्कृति में कट्टर धार्मिकता और साम्प्रदायिकता की विषाक्तता नहीं है, जो किसी अंचल या देख को टुकड़ों में बाँट दे।

ठीक इसके विपरीत लोकसंस्कृति जोड़ने की तलाश में ही लगी रहती है। उसका घटक मनुष्य-केवल मनुष्य होता है और वह मनुष्यत्व की संपूर्ति में ही लगा रहता है। उसकी मूल प्रवृत्तियों में प्रमुख है, जिजीविषा अर्थात् जीने की इच्छा। इसलिए वह अपनी इसी प्रकृति के कारण किसी भी हिंसक संस्कृति के खिलाफ रहता है। परमाणु या मक्षत्र युद्ध तो उसके स्वभाव के उल्टे हैं। नगर की लोकसंस्कृति में साँस लेता कोई वैज्ञानिक की इच्छा से विरक्त नहीं हो सकता। जब सभी में जीने की इच्छा है, तब विनाशकारी विकृति कुछ नहीं कर सकती।

कुण्ठा, निराशा, अनास्था जैसी वैयक्तिक मनोदशा से लेकर परिवार की कलह, टूटन जैसी सामूहिक परिणति

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

तक जिस मानसिक तनाव की यात्रा को आज का व्यक्ति भोग रहा है, उसका उपचार लोकसंस्कृति की सहजता, आशा, आस्था आदि से संपुष्ट निश्छल दृष्टि करती है। लोकसंस्कृति के संस्कारों, त्योहारों, उत्सवों, रीति-रिवाजों और कलाओं ने व्यक्ति को व्यक्ति और परिवार से बाँधने का ऐसा प्रयत्न किया है कि मशीनी यांत्रिकता और विज्ञानी बौद्धिकता के लगातार हमले भी उसे निष्फल नहीं कर सके। अगर गहराई से सोचें, तो लोकसंस्कृति की स्वच्छंद, निश्छल और आशावादी दृष्टि व्यक्ति एवं लोक की चेतना का संस्कार करती है। इस कारण वह व्यक्ति और लोक के मानस को स्वस्थ एवं ऊर्ध्वगामी बनाती है।

जहाँ तक भौतिकतावादी मूल्यों के बढ़ाव का प्रश्न है, वह लोकजीवन को बोझिल बनाने में कारगर भूमिका का निर्वाह कर रहा है। लेकिन उससे प्रभावित होते हुए भी ज्यादातर लोगों के मन में उसके खिलाफ घृणा के अंकुर भी उग रहे हैं। वैसे तो लोकसंस्कृति भी अर्थ से बँधी है, पर उसमें अध्यात्म की केन्द्रीय शक्ति है, जिससे एक समन्वित और संतुलित मानसिकता की प्रधानता रहती है। वस्तुतः लोकसंस्कृति समन्वय का व्यापक आधार प्रस्तुत करती है। अगर उसके मूल में विषमताओं से जूझने वाले और समानताओं के पोषक तत्त्वों की कमी होती, तो वह लोक की संस्कृति कैसे होती। अक्सर कहा जाता है कि लोकसंस्कृति में संघर्षों से टकराने की शक्ति नहीं है, पर यह सत्य नहीं है।

असल में, लोकसंस्कृति कर्मप्रधान शक्ति है, जो किसी भी सांस्कृतिक क्रिया में कर्मणा क्रियाशील होती है। अपनी इसी कर्माश्रयीऊ र्जा से वह संघर्ष करती है और विजातीय तत्त्वों से अपनी रक्षा करती है। श्वेत-रुधिर-कणिकाओं की तरह, जो रोगाणुओं को निगल लेती हैं या नष्ट कर देती हैं। लोकसंस्कृति ने दसवों-ग्यारहवीं शती से लेकर आज तक विजातीय तत्त्वों से जिस लड़ाई को जारी रखा है, वह इतिहास में दुर्लभ है। सूफी, मुस्लिम, मुगल, अंग्रेजी जैसी विजातीय संस्कृतियाँ निरंतर दबाव डालती रही हैं, लेकिन लोकसंस्कृति ने अपने लोकाचरणों से उन्हें सदा दूर रखा है। लोकाचरणों के द्वारा लोकमूल्यों को जीवित रखना लोकसंस्कृति का महत् कार्य है। आयातित मूल्य अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए सत्ता का सहारा लेते रहे, लेकिन उनके प्रभाव में केवल उस समय का राजाश्रयी वर्ग आया और लोक का अधिकतर हिस्सा लोकमूल्यों से चिपटा रहा। इस तरह लोकसंस्कृति संघर्ष करती हुई निरंतर आगे बढ़ती रही। आज भी उसका जुझारू रूप सक्रिय है, पर उसे सूक्ष्मदर्शी आँख से देखने की जरूरत है।

व्यावहारिक रूप में, लोकसंस्कृति लोकाचरण की संस्कृति है। वह सिर्फ करती पर विश्वास रखती है, इसलिए उसमें लोकादर्श और लोकमूल्य लोकाचरण की कसौटी पर कसे जाते हैं और वे लोकाचरण में ही रहते हैं।इ स कारण उसमें कथनी का उतना महत्त्व नहीं है, जितना करनी का। पोथियाँ तो उसके लिए बोझ हैं और शास्त्रीय रूढ़ियाँ-बाधाएँ। लोकसंस्कृति लोकमर्यादा से बँधी रहकर भी सहज स्वच्छंद है। वह शास्त्रीय रूढ़ियों को तोड़ती है और लोकसहजता को गति देती है, पर पूरे संयम के साथ। उसके आचरण में अराजकता का निशान नहीं होता, इसलिए परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ता।

वस्तुतः लोकसंस्कृति का व्यक्तित्व बिल्कुल गाँव जैसा है। वही सहजता, निश्छलता, स्वच्छंदता और सरलता, वैसी ही प्रकृति और परिणति, वैसे ही रंग और संस्कार। इसीलिए यह आम धारणा है कि लोकसंस्कृति गाँवों में रहती है, पर लोकसंस्कृति तो लोक की संस्कृति है, इस वजह से शहर भी उसके व्यापक दायरे में आ जाते हैं। शहर के दो-चार मुहल्ले लोकसंस्कृति का स्वाभाविक स्वरूप रखते हैं, जबकि कुछ हिस्सों में शहरीपन हावी रहता है। कुछ गाँवों में भी शहरीपन घूमता है, लेकिन ज्यादातर ग्रामवासी उसे रोकते-टोकते हैं और बहुत थोड़े ही उसके स्वागत में खड़े होते हैं। इस प्रकार गाँव और शाहर के रिश्ते धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। लोकसंस्कृति दोनों के बीच सेतु का काम कर सकती

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

है और विषमता की चौड़ी खाई को पाट सकती है।

आज की हर दिशा और हर दृष्टि विकृत होकर मानवता के लिए खतरा बन रही है। व्यक्ति के विखण्डन और घर की टूटन से लेकर आकाशी युद्ध तक की समस्याओं ने आदमी को अपने चक्रव्यूह में बुरी तरह फँसा लिया है। सवाल यह है कि क्या लोकसंस्कृति कुछ मदद कर सकती है ? क्या वह विश्व को चिंतामुक्त कर शांति की नयी दिशा दिखा सकने में समर्थ ? मेरी समझ में लोकसंस्कृति का व्यापीकरण ही सब रोगों की दवा है। वैसे तो हर अंचल की कही जाती है, लेकिन उसमें जातीयता और लोकोन्मुखता की विचित्र शक्ति होती है, जो उसे राष्ट्रीय संस्कृति से जोड़ती है। यदि स्थानीयता को विगलित कर लोकसंस्कृति के जातीय रूप को इतना व्यापक बनाया जाय कि वह विश्व की लोकसंस्कृति बन सके, तो निश्चित ही वह विश्वव्यापी लोकचेतना या लोकसंस्कृति विश्व के कल्याण और शान्ति के लिए सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

विश्व की लोकसंस्कृति कोई असंभव वस्तु नहीं है। लोकसंस्कृति के व्यापीकरण के दो प्रबल आधार हैं। एक है सामूहिकता एवं सामाजिकता का मनोविज्ञान, जो 'रक्षा', 'पारस्परिक सहानुभूति या प्रेम' और 'सामाजिकता' की मनोविज्ञान, जो लोकभावों से संपुष्ट है। मानव अपने समूह एवं जाति की सुरक्षा के प्रति सचेत होने से, एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और भाईचारे की प्रवृत्ति के कारण तथा सामाजिक जीवन की अनिवार्यता की मनोवृत्ति से संप्रेरित होकर भौगोलिक सीमाएँ तोड़ सकता है। दूसरे, किसी भयंकर विनाश या नक्षत्रयुद्ध की भयावहता से सुरक्षा हेतु भी सारे भेदभाव छोड़ एक हो सकता है। मतलब यह हे कि मनोविज्ञान का यह ठोस आधार हर परिस्थिति में लागू होता है, तब यह असंभव नहीं कि विश्व-लोकसंस्कृति के संघटन के लिए मानव राष्ट्रीय सीमाएँ त्याग दे। दूसरा प्रमुख आधार है- लोकसंस्कृति की पाचनशक्ति का। लोकसंस्कृति में आर्य, द्रविड़, निषाद, किरात और अनेक जनजातीय संस्कृतियों का समन्वय हुआ है। एक उदाहरण है नाग, शक्ति और शिव जैसे लोकदेवताओं के विकास का और दूसरा है वृक्ष, पर्वत, नदी, जंतु आदि के पूजन की व्यापकता का। लोकधर्म और लोकदर्शन में तो साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और भेदभावों के लिए स्थान ही नहीं है। आज की लोकसंस्कृति में पीर, अली आदि तक सम्मिलित हो गए हैं। इतिहास गवाह है कि लोकसंस्कृति कभी शुद्ध नहीं रही, वह दूसरी संस्कृतियों के तत्त्वों को पचाकर मिश्रित रूप में विशद और व्यापक होती गयी है, अतएव संहारकारी और अशान्त स्थितियों में यदि कोई तटस्थ अहिंसक उपचार संभव है, तो वह है लोकसंस्कृति का अंतर्राष्ट्रीय व्यापीकरण या विश्व-लोकसंस्कृति की व्यावहारिक संरचना।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.